Interpretation

LL.B

III- Years

II-Semester

कानूनों का निर्वचन
निर्वचन की आवश्यकता उददेश्य व महत्व
What do you understand
What is the need for interpretation ?

Explain:- संविधि विधान के रूप में विधि का स्रोत है जिसे अधिनियमित विधि या अधिनियम या संविधि कहते है।

सामण्ड के अनुसार विधान विधि का वह स्रोत है जो किसी सक्षम अधिकारी द्वारा कानून नियमों की धोषणा में निहित होता है यह राज्य के उचित अंग अर्थात विधान मंडल, अधनीस्थ निकाय या प्राधिकारी, जो कानून बनाने के लिये इस प्रकार सशक्त हो, द्वारा कानूनी नियमों का एक प्रकार का प्रतिपादन या घोषणा है।

<u>ऑस्टिन के अनुसार -</u> विधायी अधिनियम के बिना कोई कानून नही हो सकता है (there can be no law without legislative Act): विधान का जैसा अर्थ ऑस्टिन ने किया है वह कानून निर्माण के विशिष्ट प्रकार तक सीमित है अर्थात यह सक्षम प्राधिकारी द्वारा विधि के नियमों की अधिनियम रूप में घोषणा है इस प्रसंग में अधिनियमित विधि (statutory law) का अर्थ लिखित विधि से है जिसे सर्वोच्च वैधानिक प्राधिकारी सीधे स्थापित करता है।

समान्य विधि के विपरीत अधिनियमित विधि (statute Law) संसद अधिनियमों तक सीमित है।

<u>मैक्सवेल के अनुसार -</u> संविधि विधानमंडल की इच्छा है। Statute is the will of the legistatuter
भारत में भी संविधि का अर्थ अधिनियमित विधि है अर्थात संसद या राज्य विधान मंडल द्वारा अधिनियमित विधि।

AVADH LAW COLLEGE

भारतीय संविधान के उपबंधों के अंतर्गत विधेयक को संसद के दोनों सदनों द्वारा बहुमत से पारित होने पर राष्ट्रपति द्वारा अनुमोदित किये जाने पर, अधिनियम बन जाता है

<u>निर्वचन की आवश्यकता</u>-समान्य विधि के संबंध में निर्वचन की आवश्यकता नही होती है परंतु अधिनियमित विधि या संविधि के मामले में परिस्थिति भिन्न होती है क्योकि संविधि की प्रकृति बाहयकारी होती है अतः विधायिका के आशय का पता लगाना अन्यावश्यक हो जाता है । विशेष रूप से उस समय जबकि संविधि में अस्पष्ट या संदिग्ध शब्दों का प्रयोग किया गया हो, निर्वचन ही वह न्यायिक प्रक्रिया है, जिससे संविधि का वास्तविक अर्थ निकाला जा सकता है।

अर्थान्वयन (interpretation) या निर्वचन एक प्रक्रिया है जिसके द्वारा न्यायालय के माध्यम से विधान मंडल द्वारा बनाये गये विधि के अर्थ का निश्चय करने की खोज करते है।

Act to Maxwell "where the language is plain and admits of but one meaning the task of interpretation can hardly be said to arise"

<u>Interpretation:-</u> का हिंदी रूपांतरण है अर्थ निरूपण इसी को विधिक भाषा में निर्वचन कहते है। कानून बनाना विधायिका का कर्तव्य है न्यायालय अपने सम्मुख प्रस्तुत मुकदमों में इसी कानून को उसके बनये गये आशय तथा उसमें प्रयुक्त शब्दों के आधार पर प्रयोग करते है। यही कानून का निर्वचन कहलाता है।

इस प्रकार सामान्य भाषा में विधायिका के आशय (intention of the legislature) को स्पष्ट करना ही निर्वचन की प्रक्रिया मनमाने ढ़ग से नही अपनाई जा सकती है कानून के अस्तित्व में आने के समय से ही न्यायालयों द्वारा अधिनियम के अंतर्गत प्रयुक्त किये गये शब्दों के आशय को जानने की खोज प्रारंभ कर दी थी जिसके परिणाम स्वरूप कुछ सिंद्वांत या नियम कहते है किन्तु यह कार्य उतना सरल नही है जैसा कि यह प्रतीत होता है क्योंकि -

AVADH LAW COLLEGE

(1) अधिनियम में प्रयुक्त किये गये शब्द, आधिक अर्थ का वहन करते है क्योकि किन्ही-2 भाषा में शब्द कोई निर्धारित या निश्चित अर्थ नही रखते है विभिन्न संदर्भो में शब्दों का अर्थ भिन्न हो सकता है।

(2) संविधि का अधिनियमन करने वाले विधान मंडल के लिये यह संभव नही है कि वह अधिनियमन के समय सारी आकास्मिकताओं को पहले से ही देखे और सारी स्थितियो और परिस्थितियों को उसमें शामिल करें।

(3) तीसरे विधानमंडल का अभिप्राय वॉटसन के शब्दों में अस्थिर वाक्य-खण्ड (Slippery Pharse) होता है जो सामान्य रूप से समझे जाने वाले वास्तविक अधिनियमन में समाविष्ट आशय से किसी अनुमानित राय का संकेत देता है कि संभक्त विधानमंडल की क्या राय होगी यघपि उसका अधिनियमन करने में कोई चूक हो गई है।

इसके अतिरिक्त तत्सदृश्य मामले में न्यायालयों की विभिन्न रायें होती है। अतः न्यायाधीश के लिये यह बड़े जोखिम का कार्य है कि चाहे अधिनियम में ऐसे स्थलों पर आये शब्दों या वाक्य खंडों का उचित अर्थ व आशय स्पष्ट कर सके जहॉ वास्तव में संदेह या भ्रम होता है।

निर्वचन का उददेश्य -

Object of interpretation-

According to lord paiker C.J. the object of all interpretation is to discover the intention of parliament, "but the intention of parliament must be deduced from the language used"

अर्थान्वयन या व्याख्यान करने का प्रधान उददेश्य अधिनियम की भाषा में स्पष्ट या विवक्षित रूप से जो बात कही गई है उसका अवधारण ऐसे शब्दों के संदर्भ में करना है जिसका कि इसने पेश किया है। अर्थान्वयन या अर्थ करना एक न्यायिक प्रक्रिया है जो विशेष रूप से यह पता लगाने के लिये होती है कि विधान मंडल के आशय का अवधारण करने में मुख्य रूप से प्रयुक्त भाषा आशय का अवधारणीय तत्व होता है जैसा कि वॉटसन ने कहा कि विधान मंडल का आशय बहुत ही अस्थिर शब्द है और इसलिये यह प्रश्न नही है कि जो आशय किया

AADHAR LAW COLLEGE

गया है उसका क्या अनुमान किया जाये, किन्तु वह है कि जो कहा गया है उसका क्या अर्थ है।

संविधियों या कानूनों के प्रकार- कानूनों का वर्गीकरण उसकी अवधि, पद्धति, उद्देश्य एवं लागू होने के सीमा क्षेत्र के संदर्भ में निम्नलिखित रूप में किया जा सकता है।-

अवधि के संदर्भ में वर्गीकरण-
Classificatiojn whith reference to duration

(1) **अस्थायी कानून-** अस्थायी कानून वह है जिसकी वैधता का काल कानून द्वारा Temparary Statute- स्वंय ही निश्चित कर दिया गया है। ऐसा कानून उपरोक्तानुसार निश्चित अवधि तक ही अथवा जब तक कि उसे बीच में ही निरसित न कर दिया गया हो, वैध रहता है। कानून की समाप्ति के पश्चात यदि विधायिका इसी कानून को जारी रखना चाहती है तो एक नये अधिनियम की आवश्यकता होती है। वित्त अधिनियम एक अस्थायी अधिनियम होता है जिसे प्रत्येक वर्ष पारित करना पड़ता है।

(2) **स्थायी कानून** Permanent statute- स्थायी कानून वह है जिसमें उपरोक्तानुसार समय निश्चित नही किया गया हो । दूसरे शब्दों में जो सदैव के लिये हो, किन्तु इसका तात्पर्य यह कदापि नही है कि ऐसा कानून अपरिवर्तनीय होता है ऐसा कानून किसी दूसरे अधिनियम द्वारा संशोधित या प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

(II) पद्धति के संदर्भ में वर्गीकरण-

(1) **आज्ञापक, आदेशात्मक या बाध्यकर कानून** Mondatory, Inperatiove or obligatiory statute:- आज्ञापक कानून वह कानून है जो कुछ निश्चित कार्यों को करने के लिये बाध्य करता है या इस बात के लिये बाध्य करता है कि एक निश्चित कार्य को एक विशिष्ट ढ़ग से पूर्ण किया जाए।

(2) **निदेशात्मक या अनुमति बोधक कानून** (Direxctive or Pernissive Statatute) निदेशात्मक कानून मात्र निदेश देता है कि किसी कार्य को किया जाए लेकिन ऐसा करने के लिये बाध्य नही करता। कुछ दशाओं में कानून द्वारा विहित शर्तो या पद्धतियों का पूर्ण किया उन शर्तों अथवा तरीकों को पूर्ण न किया

AVADH LAW COLLEGE

जाए तो ऐसा करना केवल एक निदेश के रूप में माना जाता है, इन शर्तो या पद्धति का अनुपालन न करना शासित योग्य होता है। एक आज्ञापक अनुबंध का कठोरता से पालन करना अनिवार्य है जबकि निदेशात्मक उपबंध की सारभूत अनुपालन ही पर्याप्त हैं।

(III) <u>उददेश्यों के सदंर्भ में वर्गीकरण</u>
Classification with reference to objective

(1) <u>संहिताकरण कानून</u> Codifying Statute :- संहिता कारी कानून वह कानून है जो विधि को संहिताबद्व करता है अथवा किसी विशिष्ट विषय पर विधि को सम्पूर्णतः स्पष्ट करता है। संहिता में विषय से संबंधित विभिन्न कानूनों में पूर्व स्थित प्रावधान एवं सामान्य विधि उल्लेखित होती है। उदाहरणार्थ- भारतीय दंण्डसंहिता, 1860.

(2) <u>समेकनकारी कानून</u> Consolidation statute:- समेकनकारी कानून वह कानून है जो किसी विशिष्ट विषय पर विधि को एक स्थान पर समेकित करता है, यह उस विषय पर सभी वैधानिक अधिनियमों को संग्रहीत करता है एवं यदि आवश्यक हो तो गौड़ संशोधन के साथ उन्हें एक कानून का रूप प्रदान करता है। U.P. Land Laws Act)

(3) <u>घोषणात्मक कानून</u> (Dectaratirry Statute) :- घोषणात्मक कानून वह कानून है जो सामान्य अथवा कानूनी विधि के संदेहों को दूर करता है जब कुछ निश्चित अभिव्याक्तियों को गलत अर्थ में समझा जाने लगता है तो ऐसी दशा में घोषणात्मक कानून पारित करना आवश्यक हो जाता है। यह तब भी हो सकता है। जब न्यायालय किसी विशिष्ट अभिव्यक्ति को ऐसे अर्थ में लेता है जो विधायिका के अनुसार गलत है ऐसी दशा में विधायिका अचित अर्थ बताते हुए कानून पारित कर सकती है ताकि अभिव्यक्ति के उचित अर्थ द्वारा संबंधित विवाद समाप्त हो जाए। प्रायः घोषणात्मक कानून में एक प्रस्तवाना जो शब्द घोषित किया जाए वह शब्द एवं अधिनियमित शब्द सम्मलित होता है। ऐसे अधिनियम का मुख्य उददेश्य स्थापित विधि से संम्बन्धित शंका को दूर करना अथवा विधायिका जिस निर्वचन को गलत मानती है उसे संशोधित करना होता है मानवधिकार की घोषणा आदि।

AVADH LAW COLLEGE

(4) उपचारी कानून (Remedial Statute) :- उपचारी कानून वह कानून है जिससे एक नया उपचार प्रदान किया जाता है। ऐसे कानून को पारित करने का मुख्य उददेश्य किसी के अधिकार के प्रवर्तन में सुधार लाना या भूलों को ठीक करना होता है। आजकल कई विधिवेत्ताओं द्वारा एक दूसरी समानार्थक अभिव्यक्ति सामाजिक आर्थिक विधान उपचारी कानून के लिये प्रयोग की जाती है। मातृत्व लाभ अधिनियम 1961, कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923ए आदि उपचारी कानून के उदाहरण है।

(5) समर्थकारी कानून (Enabling Statute) :- समर्थकारी कानून वह कानून हैं जो उस सामान्य विधि का विस्तार करता है। जहॉ वह संकुचित है यह किसी अन्यथा अवैध कार्य को वैध बनाता है। ऐसे कानून से विधायिका किसी कार्य के किये जाने को समर्थ बनाती है। साथ ही विधायिका के उददेश्य को कार्य किया जाए इस बात के लिए भी यह कानून को विवक्षित (Implied) तौर पर समर्थ बनाता है।

(6) निःशक्तकारी अथवा असमर्थकारी कानून (Disabling Statute) :- यह वह कानून है जो सामान्य विधि के अंतर्गत प्राप्त अधिकारों को प्रतिबंधित अथवा समाप्त करता हैं।

(7) दांडिक कानून (Penal Statue) :- यह वह कानून हैं जो कुछ निश्चित कार्यों या गलतियों को दंडित करता है। यह कानून विस्तृत दंड संहिता अथवा बहुत सी धाराओं जिनमें विभिन्न गलतियों के लिये दंड का प्रावधान हो के रूप में होता है जैसे- भारतीय दंड संहिता 1860ए आयुध अधिनियम 1959 आदि।

(8) कर कानून (Fiscal Statute) :- यह ऐसा कानून है जो आय अथवा कुछ निश्चित प्रकार के व्यवहारों पर कर अधिरोपित करता है। यह आयकर, धनकर, विक्रयकर, दानकर के रूप में हो सकता है। इस प्रकार के कानून का उददेश्य सरकार के लिये राजस्व एकत्रित करना होता है।

(9) व्याख्यापक कानून (Explanation Statute): - यह वह कानून है जो विधि की व्याख्या करता है । ऐसे कानून को प्रायः किसी लोप की पूर्ति करने अथवा पूर्व कानून में प्रयुक्त अभिव्यक्ति के संदेह को दूर करने के लिये अधिनियमित किया जाता है।

(10) संशोधनकारी कानून (Amending Statute) :- यह ऐसा कानून है जो मौलिक रूप में पारित विधि में कुछ जोड़ता है या उसमें कुछ परिवर्तन लाता है। ताकि उसे सुधारा जा सके या उसके उददेश्य को अधिक प्रभावपूर्ण ढ़ग से

AVADH LAW COLLEGE

पूर्ण किया जा सके। ऐसे संशोधन कारी कानून को निरसनकारी (Repeading) कानून नही कहा जा सकता यह संशोधित किये जाने वाली विधि का ही भाग होता है।

(11) <u>निरसनकारी कानून</u> (Repealing Statute) :- यह वह कानून है जो पूर्व में अधिनियिमित कानून को निरसित करता है। ऐसा निरसन कानून की भाषा द्वारा स्पष्ट रूप में अथवा आवश्यक विवक्षित तौर पर हो सकता है।

(12) <u>अयोग्यकारी अथवा अविधिमान्यकारी कानून</u> (Curative or Validating Statute) :- यह वह कानून है जो विधि में स्थित दोष के नीरोग हेतु या विधिक प्रक्रिया को विधिमान्य बनाने हेतु या लोक या निजी प्रशासनिक प्राधिकारियों के कार्यों को विधिमान्यता प्रदान करने हेतु पारित किया जाता हैं और यदि ऐसा न किया गया होता तो ऐसे कार्य शून्य होते।

IV. **लागू होने की सीमा के संदर्भ में वर्गीकरण** (Classsification with reference to the extent of appliction): - लागू होने की सीमा के संबंध में निम्नलिखित वर्गीकरण हो सकता है–

1. लोक कानून (Public Statute)
2. निजी कानून (Private Statute)

लोक कानून वह कानून है। जो लोक नीति के मामले से संबंधित होता है। ऐसे कानून की प्रकृति सामान्य स्थानीय या वैज्ञानिक हो सकती है। निजी कानून एक ऐसा कानून हैं जो व्याक्तिगत मामलों या ऐसे मामलों के वर्ग से संबंधित होता है जिनका लोक मामलों से कोई संबंध नही होता है।

<u>निर्वचन के सिंद्धांत</u>
Principles of Interpretation

निर्वचन का प्रथम सिंद्धांत शाब्दिक या व्याकरणिक निर्वचन है जिसका तात्पर्य यह है कि शब्दों को उनका साधारण तथा स्वाभाविक अर्थ प्रदान किया जायें। अधिनियम का वही अर्थ किया जाना चाहिये जो उसके शब्दो और वाक्य खंडो

AVADH LAW COLLEGE

से साधारण और प्राकृतिक रूप में अर्थ करने पर निकलता है। अत्यंत सुरक्षित और सही मार्ग यह है कि पहले मामले के निर्देश के बिना ही शब्दों का अर्थ किया जाये। यदि अधिनियम के शब्द स्वंयमेंव बहुत स्पष्ट और संदेह रहित है तो यह आवश्यक न होगा कि ये शब्द प्राकृतिक और साधारण रूप से जो अर्थ देते है उससे अधिक इनका अर्थ निकाला जाये। नियम यह है कि भाषा सादी है और केवल एक अर्थ स्वीकार करती हैं तो अधिनियम के अर्थ करने का कोई प्रश्न नही पैदा होता हैं। और न्यायालय के लिये यह खुला नही है कि वह कोई अन्य काल्पनिक अर्थ इस आधार पर निकाले कि ऐसा अर्थ अधिनियम के अभिकथित उददेश्य से बहुत संगत है।

शाब्दिक निर्वचन की उपयोगिताः-

विस्काउंट हाल्डेन, एल, सी, की भाषा में, हम शब्दों के प्राकृतिक अर्थ से बाहर नही जा सकते जब तक कि सम्पूर्ण अधिनियम को पढ़ने पर संदर्भ हमें वैसा करने के लिये प्रेरित करें।

विसकाउंट साइमन एल0सी0 कहते है कि स्वर्णिम नियम यह है कि अधिनियम के शब्दों को प्रथमदृष्ट्या (Prinia facie) उनका सामान्य अर्थ देना चाहिए।

मदन मोहन बनाम चंद्रशेखर, A.I.R 1984 S.C 871: - के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि कानून में जो भी प्रावधान हो उन्हें शाब्दिक रूप से निर्वाचित किया जाना चाहियें।

मेलर मल बनाम के0 आसन वर्क्स प्रा0लि0 (2000) 4 SCC 285:- के मामले में उच्चतम न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि शाब्दिक निर्वचन के अपवाद वहॉ लागू होते है जहॉ नियम प्रयुक्त शब्दों के असंगत हों या जहॉ शब्द जिस संदर्भ में प्रयुक्त हुए हों वहॉ वह संदर्भ असंगत हो, या जहॉ वह भिन्न अर्थ प्रदान करता हो।

संसद के आशय को प्रयुक्त भाषा में जानना चाहिएः- शाब्दिक अर्थ का नियम अपेक्षा करता है कि अधिनियम से न तो कुछ लिया जा सकता है और न उसमें कुछ बढ़ाया जा सकता है जब तक ऐसे अनूमान का औचित्य सिद्व करने के लिये दृढ़ आधार हो कि विधान मंडल ने किसी अन्य बात का आशय किया था जिसे अभिव्यक्त करने में उसने चूक कर दी।

AVADH LAW COLLEGE

अर्थ करने का यह सुस्थापित नियम है कि नियम संहिता का आशय यह है कि अधिनियम के पढ़ने पर उसके शब्दों और वाक्य खंडों का पता लग जाये। सभी अर्थ निर्णयों का मुख्य उद्देश्य यह है कि संसद के आशय को जाना जाये। किंतु संसद का आशय अधिनियम में प्रयुक्त भाषा से प्राप्त करना चाहिए।

<u>ए0 आर0 अंतुले बनाम आर0 एस0 नायक AIR 1984 S.C 718</u>:- के मामले में उच्चतम न्यायालय अभिनिर्धारित किया कि न्यायालय को किसी उपबंध को वैसा ही पढ़ना चाहिए जैसा वह है, वह उसे सुविधानुसार नही लिख सकता है निर्वचन का यह सिंद्धांत यह अनुमति नही देता है कि धारा को इस तरह पढ़े कि उसका अर्थ अन्यथा न निकले।

<u>स्टेट ऑफ वेस्ट बंगाल बनाम सिने स्क्रीन प्रा0 लि0 (2000) 7 SCC 686</u>:- के मामले में अभिनिर्धारित किया कि निर्वचन का सामान्य नियम यह है कि जहॉ अधिनियम की भाषा स्पष्ट हो वहॉ न्यायालय प्रावधानों के विपरीत निर्वचन नही करेगा।

<u>बलजीत सिंह बनाम इलेक्शन कमीशन ऑफ इंडिया A.I.R 2001 Frlhi Pg.7</u>:- के मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब अधिनियम की भाषा संदिग्ध हो तब ही अधिनियम के बाहर देखना या जाना चाहिए। इस मामले में 16 वें संविधान संशोधन द्वारा संसद सदस्यों द्वारा ली जाने वाली शपथ में संप्रभुता एसं अंखण्डता शब्द जोड़ने पर विवाद था। न्यायालय ने विवाद सुलझाने के लिये शाब्दिक निर्वचन का प्रयोग किया।

शाब्दिक व्याख्या या निर्वचन के नियम इस प्रकार है।

(1) शब्दों का यथार्थ प्रयोग
(2) शब्दों का मुख्य एवं गौण अभिप्राय
(3) शब्दों का सामान्य अर्थ
(4) वाणिज्यिक शब्दों का अर्थ
(5) विधिक शब्दों का अर्थ
(6) तकनीकी शब्दों का अर्थ
(7) कलात्मक शब्दों का अर्थ

AVADH LAW COLLEGE

(8) एक से अधिक अर्थ रखने वाले शब्दों का अर्थ।

<u>एजस्डम जेनेरिस का नियमः-</u> यह नियम शाब्दिक निर्वचन के सिद्धांत का महत्वपूर्ण नियम हैं। जिसके अनुसार यदि किसी संविधि में विशिष्ट अर्थ वाले शब्दों का अनुगमन सामान्य शब्दों द्वारा किया जाता है तो उनका अर्थान्वयन भी उसी रूप में किया जाना चाहियें।

<u>मुख्य वाद शाब्दिक निर्वचन संबंध में-</u>

<u>आर0 बनाम एलिस (1884) 6Q.B 501</u>:- के मामले में अधिनियम द्वारा प्राधिकृत किया गया कि पागलों को सिविल हॉस्पिटल में न रखा जाये परंतु जिस जिले में मानसिक अस्पताल नही है वहॉ ऐसा नही होगा। किंतु इस मामले में उस जिले में मानसिक अस्पताल था परंतु वह पूरा भरा था अर्थात वहॉ कोई रिक्त जगह नहीं थी। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि इसमें विधायिका की भूल से विधान में ऐसी परिस्थित के बारे में प्रावधान नहीं है। इस कमी को न्यायालय पूरा नही कर सकता है।

<u>राम अवतार बनाम सहायक विक्रय कर अधिकारी A.I.R 1961 S.C 1325</u>:- के मामले में पान के पत्तों पर विक्रय कर आरोपित किया गया । अपीलार्थी ने तर्क दिया कि यह वेजिटेबिल है जो कि कर योग्य न होने के कारण विक्रय कर से मुक्त रहेगी। अपीलार्थी का तर्क शब्दकोष के अर्थ पर आधारित था कि वेजीटेबिल वह होता है जो पौधों या उसके भाग से संबंधित हो। उच्चतम न्यायालय ने इस तर्क को अस्वीकार करते हुये कहा कि जब स्वाभाविक या साधारण अर्थ संदेह से परे हो तो किसी वस्तु को शब्दकोष का तकनीकी या शास्त्रीय अर्थ नही दिया जा सकता है। साधारण अर्थ में पान का पत्ता वेजीटेबिल नही है अतः कर लगाया जा सकता है।

<u>सरस्वती चीनी मिल बनाम हरियाण राज्य बोर्ड A.I.R 1992 S. C 224</u>:- उपरोक्त बाद में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जल (प्रदूषण निवारण तथा नियंत्रण) उपकर अधिनियम 1977 की प्रथम अनुसूची की प्रविष्टि 15 में प्रयुक्त शब्द वेजीटेबिल को आम अर्थ में प्रयुक्त यिका गया है इस शब्द को वनस्पतिक अर्थ नही दिया जा सकता। अतः गन्ना वेजीटेबिल नही है। इस प्रकार गन्ने से

AVADH LAW COLLEGE

चीनी बनाने वाले उद्योग इस प्रविष्टि के अंतर्गत नही आते है और उनसे उपकर नही लिया जा सकता। शीरा से मद्यसार बनाने वाले उद्योग भी इस प्रविष्टि के अतंर्गत उद्योग नही कहे जा सकते।

इंडियन होटल्स क0 लि0 बनाम इन्कम टैक्स ऑफीसर मुम्बई (2000) 7 SCC 39:- के मामले में इन्कम टैक्स अधिनियम 1961 में उल्लिखित शब्द विनिर्माण की व्याख्या करते हुए कहा कि इस शब्द का प्रयोग कई प्रकार से किया जा सकता है परंतु यहॉ उसका अर्थ अधिनियम में प्रयुक्त उददेश्य तथा भाषा के अनुरूप होना चाहिए। इस संदर्भ में धारा 80जे0 के तहत प्राप्त छूट नयी वस्तुओं के उत्पादन पर होगी। यह उन मामलों पर लागू नही होगी जो कि प्रसंस्करण के द्वारा बनाये जाते है। होटल व्यावसाय में आटा चावल, मांस जैसी वस्तुएँ बनाना विनिर्माण में नही आता है।

रिष्ट का नियम

Mischief Rule or
Rule propounded in Heyden's case

रिष्ट के नियम का प्रतिपादन हेडेन के मुकदमें में किया गया था। इस नियम का मुख्य उददेश्य यह है कि सदैव ऐसा अर्थ किया जाना चाहिये जो अरिष्टि (Mischirg) कर दमन करे और उपचार को बढ़ाये। अतएवं उचित रूप में किसी अधिनियम की व्याख्या करने के लिये यह आवश्यक होगा जैसे कि लिंडले एम0 आर0 ने इनरे मेफेयर प्रॉपर्टी कंपनी में इसकी पुनः पुष्टि की है कि जब अधिनियम का अर्थ किया जा रहा हो उस समय वर्तमान विधि का कैसे विचार करें अशिष्टि क्या थी जिसके लिये प्रचीन विधि ने उपबंध नही किया और अधिनियम द्वारा उपबंध किया गया है।

हेडेन के मामले (1584) 360 Rep. 79 ER 637:- में एक्सचेकर के बौरोन्स द्वारा यह निश्चय किया गया था कि सामान्यतः सभी अधिनियमों की निश्चित और वास्तविक व्याख्या करने के लिये चार बातों पर विचार किया जाना आवश्यक है (चाहे वे दांडिक हों या लाभदायक, कॉमन लॉ को प्रतिबंधित करने वाली हों या उसे विस्तृत बनाने वाली हों)-

VADHI LAW COLLEGE

(1) अधिनियम बनने के पहले कॉमन लॉ क्या था।

(2) अरिष्ट और त्रुटि क्या थी जिसके लिये कॉमन लॉ ने उपबंध नही किया था।

(3) पार्लियामेंट ने क्या उपचार देने का निश्चय किया है, और कॉमन लॉ के इस रोग का उपचार करने के लिये किसे नियुक्त किया है।

(4) उपचार का वास्तविक कारण और न्यायधीशों का कार्य सदैव ऐसा अर्थ या निर्वचन करने के लिये है जो अरिष्टि का दमन करेगा और उपचार की वृष्टि करेगा।

यद्यपि वर्तमान समय में चार प्रश्न जैसा कि हेडेन के मामले में उठाये गये है, न्यायधीशों ने अपने निर्णयों में इनका विचार नही किया हैं। उनमें अशिष्टि का विचार इनके बीच सामान्य है। अरिष्टि नियम विशेष रूप से वहॉ लागू होता है। जहॉ सारवान शब्दो के दो अर्थ निकलते है। **कन्हई लाल सुर बनाम परमनिधि साधू खान** A.I.R 1957 S.C 907 के मुकदमे में उच्चतम् न्यायालय ने अवलोकन किया है कि हेडेन के मुकदमे में दिये गये नियम ने गौरवपूर्ण रचना की हैसियत प्राप्त कर ली है।

एस0 सी0 गर्ग बनाम दिल्ली इलेक्ट्रिक सप्लाई अंडरटेकिंग A. I.R 1995 Del.62:- के मामले में यह स्पष्ट किया गया है कि शब्दों का अर्थ -निर्धारण इस प्रकार किया जाना चाहिये कि रिष्टि को स्थान न मिले।

रायपुर डवलेपमेंट अथॉरिटी बनाम अनुपम सहकारी ग्रह निर्माण समिति (2000) 4 S.C.C 537:- के मामले में उच्चतम न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि हेडन का सिंद्वांत अब पूर्ण रूप से स्थापित हो चुका है। न्यायालय ने कहा कि निर्वचन के लिये यह देखना चाहिये कि-

(1) अधिनियम के बनने के पूर्व क्या विधि थी।

(2) ऐसी क्या रिष्टि या त्रुटि थी जिसके लिये अधिनियम बनाया गया।

(3) अधिनियम ने क्या उपाय उपलब्ध कराये है।

(4) उपाय का क्या कारण है।

AVADH LAW COLLEGE

न्यायालय द्वारा अधिनियम का ऐसा निर्वचन करना चाहिये जिससे रिष्टि कम हो तथा उपाय को बढ़ावा मिले।

निष्कर्ष यह है कि हेडेन का मामला केवल वही लागू होता है जब कि प्रश्नगत शब्द अस्पष्ट होते है और उचित रीति से एक से अधिक अर्थ रखने में समर्थ होते है। इस नियम का वहॉ प्रयोग नही होता जहॉ शब्द केवल एक अर्थ रखने में समर्थ होता है और उचित रूप में कोई वैकल्पिक अर्थ नही खुला होता है।

रिष्टि का नियम कब लागू होगाः- सभी विधिवेन्ताओं ने यह धारित किया है कि संविधि का अर्थ करने में यह केवल वैध नही होगा किंतु यह अत्यंत सुविधाजनक होगा कि दोनो को पूर्वोत्तर अधिनियम के लिये निर्देशित किया जाये और उन दोषों को निर्देशित किया जाय जिसे पूर्व अधिनियम को जिसके विषय में कहा जाता है। संदेह की अवस्था में यह सदैव राय दिये जाने योग्य है कि संविधि के उददेश्य और अभिप्राय को निर्देशित किया जाये। निर्वचन का यह दृष्टिकोण हेडेन के मुकदमें में प्रतिपादित सिंद्धांत की नीव है।

बंगाल इम्यूनिटि बनाम बिहार राज्य, A.I.R 1955 S.C 661:- के मामले मे संविधान के अनु 286 का अर्थ करने में उच्चतम न्यायालय ने इसी नियम का प्रयोग किया है। संविधान लागू होने के पहले प्रांतो में प्रचलित कानून की स्थिति तथा प्रादेशिक बांड (Territorial nexus) के सिंद्धांत पर स्थापित विभिन्न विधान मंडलो की कर-निर्धारण की शक्तियों के प्रयोग में जो मतभेद है उसके संधर्ष की चर्चा करने के बाद मुख्य न्यायाधीश एस0आर0 दास ने अवलोकन किया है। कि कर-निर्धारण की बहुविविधता की अरिष्टि की चिकित्सा करने के लिये और भारत संध में व्यापार अथवा वाणिज्य का अंतर्राज्जीय उन्मुक्त प्रवाह सुरक्षित रखने के लिये तथा किसी प्रांतीय अवरोध के बिना भारत को एक आर्थिक इकाई बनाने के लिये अनु0 286 का निर्माण किया गया है।

मंगू सिंह बनाम निर्वाचन अधिकारी, A.I.R 1957 S.C 871:- अपीलार्थी द्वारा नामांकन भरते समय उसके प्रति एक वर्ष से अधिक की मॉग के नगरपालिका कर बकाया थे। परंतु उसने निर्वाचन की तिथि से पूर्व उर्पयुक्त बकाया राशि जमा कर दी एवं वह चुनाव में विजयी हुआ। उत्तर प्रदेश नगर पालिका अधिनियम 1916 की धारा 13(द्य)(छ) के अंर्तगत यह प्रावधान था कि ऐसा कोई व्यक्ति जिस पर एक वर्ष से अधिक क नगर पालिका कर अथवा अन्य देय बकाया हो निर्वाचन के अथवा नगरपालिका बोर्ड का सदस्य होने के लिये अयोग्य होगा और भुगतान होते ही उसकी अयोग्यता समाप्त हो जायेगी। अपीलर्थी ने यह तर्क दिया

किस प्रसंग में सुसंगत तिथि मतदान की तिथि है नामांकन भरने की नही। इसके अतिरिक्त उसे मॉग से संबंधित कोई नोटिस भी नही दिया गया । उच्चतम न्यायालय ने उपयुर्क्त तर्को को अस्विकार करते हुए कहा कि याद्यपि मॉग शब्द का साधारण अर्थ जिसे मॉग जाए होतो है परंतु उपर्युक्त संबंध में विधायिका का ऐसा आशय नही था एवं यहॉ भुगतान तिथि नामांकन भरने की तिथि ही थी न कि मतदान की । रिष्टि का नियम लागू करने से यह स्पष्ट है कि वर्तमान संदर्भ में शब्द मॉग का अर्थ नगरपालिका कर अथवा अन्य बकाया राशि ही है।

रंजीत बनाम महाराष्ट्र राज्य, A.I.R 1965 S.C 881:- अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता की धारा 292 के अधीन अश्लील पुस्तक बेचने का दोषी पाया गया था। अपीलार्थी ने तर्क दिया था कि उसकी दुकान में बहुत सी पुस्तक है उसके लिये यह जान पाना असंभव है कि कौन सी किताब अश्लील है या नही न्यायालय ने इस तर्क से असहमति व्यक्त करते हुये कहा कि धारा 292 में स्पष्ट लिखा है कि अश्लील साहित्य को बेचना या रखना इस धारा के तहत दोषपूर्ण है।

AVADH LAW COLLEGE

प्रश्नः- न्यायिक सक्रीयता (Judicial Activism) से आप क्या समझते हैं ? निर्णीत वादों के हवालों से इसकी व्याख्या कीजिए ।

Q.:- What do you mean by judicial activism ?Discuss it by decided cases.

उत्तरः- **न्यायिक सक्रीयता (Judicial Activism):-** न्यायिक सक्रीयता की अवधारणा अमेरिका से ली गई है भारतीय संविधान में न्यायिक सक्रीयता शब्द की कहीं भी परिभाषित नहीं किया गया फिर भी न्यायालयों ने अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए न्याय से सम्बन्धित उल्लेखनीय कार्य किये जो न्यायिक सक्रीयता की एक मिसाल है ।

न्यायिक सक्रीयता की आवश्यकता क्यों ? - इधर दो दशकों से न्यायिक सक्रीयता का महत्व काफी बढ़ गया है क्योंकि प्रजातान्त्रिक देश में जनता सरकार पर निर्भर करती है तथा प्रजातान्त्रिक देश (Democratic Country) में जनता द्वारा बनायी गई जनता की सरकार होती है । ऐसी परिस्थितियों में जब कानून का सही ढ़ंग से संचालन तथा जनता के अधिकार का पालन उचित तरीके नहीं हो पाता है तो ऐसे में भारतीय नागरिक अथवा देश के नागरिक न्यायपालिका का आश्रय लेते हैं तो ऐसी परिस्थितियों में न्यायपालिका अपने अधिकार का पालन जो कि निर्वाचन का अधिकार है का पालन करते हुए नागरिकों के अधिकार दिलाना अथवा न्याय करके अपनी सक्रीयता का परिचय देती है इस प्रकार जब नागरिकों के अपने अधिकार वंचित होने से बचाने में न्यायपालिका जो भूमिका न्याय द्वारा अदा करती है उसे न्यायिक सक्रीयता करते हैं अतः ऐसी ही परिस्थितियों में न्यायिक सक्रीयता (Judicial Activism) की आवश्यकता पड़ती है ।

न्यायिक सक्रीयता (Judicial Activism) वर्तमान न्याय प्रणाली की एक आवश्यकता बन गया है जिसके कारण न्यायालयों ने समय-समय पर निम्नलिखित केसों में न्यायिक सक्रीयता दिखाया है -

(1)

मेनका गांधी (Menka Gandhi) बनाम भारत संघ, A.I.R. 1978 S.C.

वाद का मुख्य बिन्दु (Main points of Disputes):- यह के संविधान के अनु0 21 प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से सम्बन्धित है इस केस का मुख्य बिन्दु था कि श्रीमती मेनका गांधी का पासपोर्ट ज़ब्त कर लिया गया था तथा उनहें विदेश भ्रमण करने से केन्द्रीय सरकार द्वारा मना कर दिया गया था ।

प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता एक मौलिक अधिकार (Life & Personal liberty as Fundamental rights):- भारतीय संविधान के अनु0 21 में प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता (Life and Personal liberty) को नागरिकों के मूल अधिकार के रूप में परिभाषित किया गया है । किसी को बिना किसी युक्ति युक्त कारण के उसको अपने अधिकार (मौलिक अधिकार) से बाधित नहीं किया जा सकता है । अर्थात भ्रमण करने का अधिकार एक मौलिक

AVADH LAW COLLEGE

अधिकार है । उक्त केस में वादी को बिना किसी युक्ति-युक्त कारण के वंचित नहीं किया जा सकता है ।

मेनका गांधी के केस का तथ्य (fact of Menka Gandhi's case):- इस केस में मुख्य तथ्य यह है कि मेनका गांधी को विदेश भ्रमण करने से मना कर दिया गया था तथा अयुक्तियुक्त तरीके से उनके पासपोर्ट को ज़ब्त कर लिया गया था ।

उच्चतम नयायालय द्वारा दिया गया निर्णय (Judgment by Supreme Court):-उच्चतम न्यायालय के सम्मुख अनु0 21 से सम्बनिधत महत्वपूर्ण मामला जो वयक्ति के प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता से सम्बन्धित था । इस केस में उच्चतम न्यायालय ने Mann vs Iliyanayas 1905 ,Amerika" के केस का हवाला देते हुए निर्णय दिया प्राण एवं दैहिक स्वतन्त्रता का अर्थ बहुत सीमित नहीं लगाना चाहिए उन्होंने अपने निर्णय *नैसर्गिक नयाय (Natural Justice) को सम्मिलित करते हुए कहा कि प्राण एवं दैहिक* स्वतन्त्रता का अर्थ बहुत व्यापक है जिसमें भ्रमण करने का अधिकार शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार व्यापार करने का अधिकार आदि सम्मिलित हैं, इसलिए इन अधिकारों से व्यक्ति नागरिकों के मौलिक, मानसिक तथा आर्थिक आदि विकास सम्भव हो सकेगा यह अधिकार नागरिकों का मूल अधिकार है । मेनका गांधी का पोसपोर्ट ज़ब्त करना तथा भ्रमण करने से रोकना अयुक्तियुक्त मौलिक अधिकार का हनन है अर्थात बिना युक्तियुक्त कारण के किसी व्यक्ति को उसके अधिकार से वंचित नहीं किया जा सकता है । परन्तु यह अधिकार आत्यन्तिक (Absolute right) नहीं है ।

न्यायिक सक्रीयता का एक अच्छा उदाहरण -

एम0सी0 मेहता बनाम भारत संघ, A.I.R. 1987 S.C.न्यायिक सक्रियता का यह केस एक अच्छा उदाहरण है क्योंकि उचचतम नयायालय ने अपनी सक्रियता का परिचय देते हुए Ryland vs flechor के केस में justice Blackburn 1868 द्वारा प्रतिपादित (Rule of strict liability) कठोर दायित्व के सिद्धान्त का अनुसरण न करते हुए **पूर्ण दायित्व का सिद्धान्त** (Rule of absolute liability) के सिद्धान्त प्रतिपादित किया जिसका अर्थ है कि जो कोई व्यक्ति कोई खतरनाक वस्तु अपने भूमि या परिसर में रखता है तथा उससे किसी को क्षति होती है तो उसके लिए वह पूर्णरूप से उत्तरदायी होगा तथा उसे किसी प्रकार का बचाव (अपवाद) का सहारा नहीं मिलेगा । उच्चतम न्यायालय ने यह सिद्धान्त इसलिए प्रतिपादित किया कि कठोर दायित्व के सिद्धान्त में जो अपवाद दिये गये थे उससे प्रतिवादी प्रायः वच जाया करता था ।

निष्कर्ष (conclusion) :- इसप्रकार यह कहा जा सकता है कि इधर दो दशक से न्यायिक सक्रियता का काफी तेज़ी से विकास हुआ है जिस से नागरिकों के अधिकारों का हनन नहीं हो पाता तथा उन्हें न्याय मिलने की अधिक सम्भावनाऐं हो जाती हैं ।

AVADH LAW COLLEGE

प्रश्नः- "अर्थान्वयन अमान्य से मान्य करना अच्छा है", विवेचना कीजिऐ ।

Q.:- "Ut-res magis valeat quam pereat" Explain.

उत्तरः-अर्थान्वयन अमान्य से मान्य करना अच्छा है (Ut-res magis valeat quam pereat) :- जहां पर दो अनुकल्प अर्थान्वयन सम्भव हों, तो ऐसी स्थिति में न्यायालय को उस अर्थ को चुनना चाहिए जो उस पद्धति को, जिसके लिए उस कानून को पारित किया गया है, बनाये रखकर कार्य करता रहे, न कि ऐसे जिनसे कि उन्हें अपनाने में अड़चने आयें । किसी उपबन्ध अथवा अभिव्यक्ति के दोनों अर्थों अथवा निर्वाचनों में से वह जो सीमित हों तथा जिनसे विधान का उद्देश्य अथवा विधायिका का आशय स्पष्ट नहीं हो पा रहा हो, उसे स्वीकार किया जाना चाहिए तथा ऐसे निर्वाचन का अनुसारण किया जाना चाहिए जिसका परिणाम प्रभावकारी हो तथा जो उचित हो । इस सिद्धान्त को "अमान्य से मान्य करना अच्छा है" का नियम भी कहा जाता है ।

मूथू गोन्डर बनाम पेरियन्न गोण्डर, A.I.R. 1982, S.C. 137 के मामले में उच्चतम न्यायालय द्वारा अवधारित किया गया है कि किसी भी संविधि की व्याख्या करते समय न्यायालय को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि वह व्याख्या उस संविधि के उद्देश्य की पूर्ति करने वाली न हो, न कि उसे विफल करने वाली ।

धूम सिंह बनाम प्रकाश चन्द सेठी, A.I.R. 1975, S.C. 1012 के मामले में विजयी घोषित प्रत्याक्षी, जो कि अभियर्थी था ।

प्रश्नः- अर्थान्वयन साहचर्येण ज्ञायते का सिद्धान्त क्या है ? इसकी विवेचना निर्णीत वादों की सहायता से कीजिऐ ।

Q.:- What is the principal of Noscitur a sociis ? Explain this with the help of some decided cases.

उत्तरः-अर्थानवयन साहचर्येण ज्ञायते (Noscitur a sociis):- लैटिन शब्द 'नॉसिटर' का अर्थ जनता तथा 'सोसायस' का तात्पर्य साहचर्य अथवा सहयोजन हैं । इस प्रकार 'नॉसिटर और सोसायस' का तत्पर्य साहचर्य द्वारा जनता हैं । जब दो या दो से अधिक ऐसे शब्द जिनके अर्थ सदृश अथवा एक हों एवं दोनों का प्रयोग एक साथ किया गया हो तो उन्हें उनके सजातीय अर्थ में ज्ञात किया जाना चाहिए । वे अपना रंग आपस में एक-दूसरे से ग्रहण करते हैं । जिससे उनमें से अधिक साधारण शब्द का अर्थ कम साधारण शब्द के सदृश अर्थ में निर्बन्धित हो जाता है । किसी शब्द को उसकी संगति में कौन हैं, से जाना जा सकता है

AVADH LAW COLLEGE

साहचर्यित शब्द परस्पर व्याख्या तथा सीमित करते हैं । यह सिद्धान्त विधायिका के वास्तविक आशय को प्राप्त करने में सहायक होने के कारण उस जगह अभिभावी नहीं हो सकता, जहां यह स्पष्ट हो कि जान-बूझकर व्यापक शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

यह सिद्धान्त यह सुव्यवस्थित करता है कि एक ही शब्द के अर्थ पूरी संविधि की विषय-सूची से संग्रह किय जा सकते हैं । इस सिद्धान्त को सम्बन्द्ध-शब्द सिद्धान्त भी कहते हैं, जो संदिग्ध शब्दों के अर्थ को सुनिश्चित करने में सहायक होते हैं । परन्तु यह सिद्धान्त ऐसी स्थिति में लागू नहीं होता है जहां विधायिका का आशय स्पष्ट एवं संदिग्ध होता हैं । यदि किसी संविधि में किसी शब्द का अर्थ जान-बूझकर विस्तृत दिया गया हो तो वहां उस शब्द का अर्थ को संकुचित करने में इस सिद्धान्त का प्रयोग किया जा सकता है ।

<u>मैसर्स रोहित पल्प एण्ड पेपर मिल्स लि0 बनाम कलेक्टर ऑफ सेण्ट्रल ऑफ एक्साईज, बड़ौदा,</u> A.I.R. 1991, S.C. 754 के मामले में उच्चतम न्यायालय के द्वारा अवधारित किया गया है कि सिद्धान्तों एवं पूर्व निर्णयों का प्रयोग यान्त्रिक तरीके से नहीं किया जा सकता । वे तभी तक सहायक हैं जब तक वे मार्ग-दर्शक हैं और सामान्य भाव के सिद्धान्त एवं तर्क का सारांश बताते हैं ।

प्रश्नः- संजाति अर्थान्वयन के सिद्धान्त से आप क्या समझते हैं ? इसकी विवेचना निर्णीत वादों की सहायता से कीजिए ।

Q.:- What do you understand by the principle 'Edjusdem generis' ? Discuss it with the help of decided cases.

<u>उत्तरः-सजाति अर्थान्वयन (Edjusdem Generis) :-</u> **'एजुस्डेम जेनेरिस'** एक अभिव्यक्ति है, जिसका तात्पर्य है **'उसी प्रकार का'** । समानयता साधारण शब्दों को, दूसरे शब्दों की भांति उनके प्राकृतिक अर्थ में ही समझना चाहिए जब तक कि सन्दर्भ दूसरे अर्थ ग्रहण करने को बाध्य न करें, परन्तु जब एक साधारण शब्द का प्रयोग एक सुस्पष्ट कोटि के शब्दों के पृष्ठ में लिया गया हो, तो साधारण शब्द को भी उस सुस्पष्ट कोटि के सीमित अर्थ में निर्वाचित किया जा सकता है । साधारण शब्द पूर्ववर्ती विशिष्ट अभिव्यक्तियों से अपना अर्थ लेता है, क्योंकि विधायिका ने एक सुस्पष्ट कोटि के विशिष्ट शब्दों द्वारा ऐसा करने के लिए अपना आशय स्पष्ट कर दिया है । यह सिद्धान्त कम साधारण शब्दों तक ही सीमित है । यदि विशिष्ट अभिव्यक्तियां एक सुस्पष्ट कोटि में नहीं आती हैं, तो इस नियम को लागू नहीं किया जा सकता है ।

यदि कोई साधारण शब्द केवल एक विशिष्ट शब्द का अनुसरण करता है, तो उसएक विशिष्ट शब्द से कोई एक सुंस्पष्ट कोटि नहीं बनती है और इसलिए ऐसी दशा में सजाति अर्थान्वयन का सिद्धान्त लागू नहीं किया जा सकता है, परन्तु अपवाद के रूप में कुछ इस प्रकार के

AVADH LAW COLLEGE

दृष्टान्त भी मिल जाते है जिनमें केवल एकमात्र शब्द की कोटि मानकार इस सिद्धान्त के आधार पर सीमित अर्थ देकर निर्वचन किये गये हैं । यदि प्रयोग किये गये विशिष्ट शब्दों से एक सम्पूर्ण कोटि समाप्त हो जाती है, तो इसका अर्थ यही है कि विधायिका का आशय किसी और विस्तृत अथवा बड़ी कोटि से या जिसे खोजने का प्रयत्न न्यायालय करेगा । सजाति अर्थान्वयन का सिद्धानत का आधार यह है कि सार्विक लागू करने का सिद्धान्त नहीं है । यदि किसी विधान का सनदर्भ इस सिद्धान्त को लागू करने के विरूद्ध हो तो इसे लागू नहीं किया जा सकता है । सजाति अर्थान्यवन के सिद्धान्त का आधार यह है कि यदि विधायिका का आशय साधारण शब्दों को असीमित अर्थ में प्रयोग करना होता तो विधायिका का विशिष्ट शब्दों का प्रयोग करने की कोई आवश्यकता नहीं थी

शैलेन्द्र कुमार श्रीवास्तव बनाम डिप्टी रजिस्ट्रार (एक्जामिनेशन) यूनिवर्सिटी ऑफ इलाहाबाद, A.I.R. 1998, Allahabad 101 के मामले में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के द्वारा अवधारित किया गया है कि जहां संविधि में यह व्यवस्था की गई हो कि सामान्य बातों का सामान्य अर्थ लिया जाये, वहां उनका वैसा ही अर्थ लिया जाना चाहिए । यदि शब्दों की तद्नुकूल व्याख्या नहीं की जाती है तो न्यायालय का आदेश दूषित माना जायेगा

प्रश्नः- संविधियों की व्याख्या में प्रकल्पनाओं का क्या महत्व है ? मुख्य उपधारणाओं की संक्षेप में विवेचना कीजिए ।

Q.:- What is the importance of presumptions in interpretation of statutes ? Explain the main presumptions.

उत्तरः-प्रकल्पना से अभिप्रायः- प्रकल्पना अथवा उपधारणा से अभिप्राय है किसी तथ्य के सम्बन्ध में परिकल्पना कर लेना या अनुमान लगा लेनो । यदि कोई व्यक्ति कहीं पर धुआं निकलता हुआ देखता है, तो वह यह परिकल्पना करेगा कि कहीं न कहीं आग अवश्य लगी होगी । कई कार्य ऐसे होते हैं जो उपधारणाओं पर निर्भर करते हैं । संविधिओं में इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट प्रावधान नहीं होता है । संविधियों की व्याख्या में इन उपधारणाओं की मदद न्यायालय प्राचीन काल से ही लेते रहे हैं ।

मनोरंजनदास बनाम स्टेट वेस्ट बंगाल, A.I.R. 1988, Kolkata 22 के मामले में कलत्ता उच्च न्यायालय द्वारा यह अवधारित किया गया है कि जाहं किसी अधिनियम के अन्तर्गत संविधिक निकायों को शक्तियां प्रदत्त की जाती हैं, वहां यह उपधारणा की जायेगी कि निकायों द्वारा इन शक्तियों का प्रयोग उन सभी कार्यों को पूरा करने के लिए किया जा सकता है, जो उस अधिनियम के उद्देश्यों एवं प्रयोजनों को पूरा करने के लिए आवश्यक हों ।

MADHAV COLLEGE

संविधान का निर्वचन (Interpretation of constitutional Law)

सामान्य कानूनो के समान ही संविधान के निर्वाचन में भी संविधान निर्माताओ के अशय को ज्ञात करने के लिए न्यायालय उसमें प्रस्तुत शब्दो से ही उनके आशय को प्राप्त करने का प्रयास करता है।

संविधान मूल विधि है – यह मूलभूत दस्तावेज है। किसी संवैधानिक उपलब्ध के जब एक से अधिक युक्तियुक्त अर्थ निकलते हो तो वह अर्थ को सही न मानते हुए न्यायालय उस अर्थ को मानेगा जिसमें उन उपबन्धो का सुगमतापूर्वक चलता रहना सुनिश्चित किया जा सके।

संविधान को व्यापक और उदार रूप में निवर्चित किया जाना चाहिए जिससे उसके समस्त भागो को प्रभाव मिल सके और यह उपधारणा यह होनी चाहिए कि संविधान निर्माताओ का आशय किसी प्रकार का विरोध या असंगति उत्पन्न करना नही था।

इसे संकुचित या पांडित्य प्रदर्शन के रूप में अर्थान्वित नही किया जा सकता, न्यायालय को व्यापक और उदारवादी दृष्टिकोण अपनाना चाहिए संविधान के शब्दो का अर्थ ही वास्तव में विधि की आत्मा है,

Keshwanand Bharti Vs. State of Kerala AIR 1973 SC 146 :

में अनुच्छेद 368 में प्रयुक्त शब्द संशोधन का निर्वचन करतें हुए SC नें स्पश्ट किया कि इस शब्द का सही अर्थ बाह्य स्त्रोतो यथा Dictionary आदि में न ढूढकर संविधान के अन्दर ही ढूढा जाना चाहिएं यदि शब्द के सही अर्थ मे काई संदेह हो तो संविधान की उद्देशिका से निश्चय ही सहायता ली जा सकती है। क्याकि उद्देशिका में प्रस्तुत शब्द हम भारत के लोग एतत् द्वारा उस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मर्पित करतें है को चुनौती नही दी जा सकती। शब्द संशोधन को अलग रूप में नही पढा जा सकता वरन् एक मिश्रित दस्तावेज में प्रयुक्त शब्द के रूप में पढा जाना चाहिए।

इस अनुच्छेद में संशोधन की शक्ति एवं प्रक्रिया दोनो निहित है और भाशा स्पष्ट है इस उपबंन्ध के द्वारा संसंद को प्रदत्त शक्ति विशिष्ट है तथा इसे प्रत्यायोजित नही किया जा सकता।

A.K. Gopalon Vs. State of Madras AIR 1950 S.C. 27.

में S.C.ने अभिव्यक्ति किया कि--यद्यपि हमें संविधान के शब्दो को निर्वचन के उन समान सिद्धांतो पर निर्वचित करना है जिन्हे हम साधारण विधि पर लागू करते है तो भी निर्वचन के यही सिद्धांत हमें बाध्य करते है कि जिस अधिनियम का निर्वचन हम कर रहे है उसकी प्रकृति और परिधि का हम ध्यान रखे और यह स्मरण रखना चाहिए कि यह संविधान है, एक विशेष रचना है जिसके अर्न्तगत विधियो को बनाया जाना है ये केवल अधिनियम नही है जो यह घोषणा करता है कि विधि क्या है।

संविधान का निर्वचन करते समय Count ने निम्न सिद्धांतो को ध्यान में रखा है

1. विवक्षित शक्तियो (Imptied powers) का सिद्धान्त
2. आनुशंगिक या प्रासंगिक (incidental or Ancillary) शक्तियो का सिंद्धात
3. विवसित प्रतिशेध (Imptied Prohibition) का सिंद्धात
4. दखलकृत क्षेत्र (Accupied field) का सिद्धांत
5. सार और मर्म (Pith and Substance) का सिद्धांत
6. आभासी विधान (Colourable Legislative) का सिद्धांत
7. राज्यक्षेत्रीय सम्बन्ध (Territorial Nexù) का सिद्धांत
8. पृथक्करण (Severabolity) का सिद्धांत
9. भविश्य लक्षी प्रत्यादेश (Prospective Oveerruting) का सिद्धांत
10. ग्रहण (Elipse) का सिद्धांत

1. **विवसित शक्तियो का सिद्धांत--** संविधान में अन्य बातो के साथ- साथ वे उद्देश्य जो देश अपनी जनता के लिए प्राप्त करना चाहता है दिये रहते है और साथ ही विधायिका को प्रदत्त शक्तियो की रूप रेखा भी दी रहती है दो विधियाँ जो शक्तियो के निश्पादन कि लिए आवश्यक और उचित होती है अथवा जो इन शक्तियो के लिए विवक्षित है ऐसी उपधारणा है।संविधान की शक्तियो को सामान्य शैली में अनुदत्त किया जाता है जिनमें से आवश्यक रूप से विवसित शक्तियो का उद्दभव होता है।निर्वचन का यह एक स्थापित सिद्धात है कि जब जब भी संविधान द्वारा कुछ शक्तिया प्रदान की जाती है

या कुछ अवरोध लगाये जाते है तो उनके संपन्न करने या निश्पादन में जिन शक्तियो की आवश्यकता हो वह भी विवक्षित तौर पर उसके द्वारा प्रदत्त होती है और प्राकृतिक रूप में इसका अर्थ यह है कि वह विकसित शक्तिया भी संवैधानिक है।

2. **आनुशंगिक या प्रासंगिक शक्तियो का सिद्धांत** – यह विवक्षित शक्तियो के सिद्धांत से काफी मिलता सिद्धांत है अनेक दोशो में संविधान द्वारा विधायिका को विधि निर्माण के लिए आनुशंगिक शक्तिया प्रदान की गई है। परन्तु जहाँ ऐसी शक्तिया प्रदान नही की गई है तो यह उपधारणा है कि जब विधायिका संविधान में प्रदत्त विशिष्ट शक्तियों के अर्न्तगत विधि का निर्माण कर रही हो तो उसे वह शक्तियां प्राप्त है जिससे वह प्रभावी रूप से विधि अधिनियमित कर सके। आनुश0 और प्रासं0 शक्तियो का आधार यह सिद्धांत है कि सविधान सर्वोपरि विधि होने के कारण इसका निर्वचन संकुचित एवं पांडित्य प्रदर्शन के रूप में न किया जाकर उदार और विस्तृत रूप में किया जाना चाहिए विधिनिर्माण की आवश्यक शक्तियो को विधायिका द्वारा किसी अन्य को प्रत्यायोजित नही किया जा सकता पर किसी समनुशंमी या प्रासंगिक कार्यवाही के लिए प्रत्यायोजन बिल्कुल उचित है। भारतीय संविधान के सातवी अनुसूची ये तीनो सूचियो को बार–2 विस्तृत व उदार रूप में निर्वचित किया गया है। संघ सूची की प्रविष्ट 93 और राज्य सूची की प्रविष्ट 64 में लिखे हुए शब्द इसी सूची के विषयो में से सभी विषय से सम्बन्धित विधियो के विरूद्ध अपराध आनुशंगिक और प्रासंगिक शक्तियो के दृष्यन्त है।

3. **<u>विवसित प्रतिषेध का सिद्धांत</u>**– कुछ देशो के संविधान में संघ या केन्द्रीय विधायिका को कुछ विषयो पर, जिनको एक सूची में सूचीबद्ध किया गया है और सूची से परे रखे गए सभी विषयो पर राज्य विधायिका को विधि बनाने के लिए सशक्त किया गया है। परन्तु उसके विपरीत कुछ अन्य राष्ट्रो के संविधान में संघ और राज्य विधायिकाओ को विभिन्न सूचियो के अर्न्तगत उल्लिखित विभिन्न प्रविष्टियो के अलग–2 क्षेत्रो में विधि बनाने की शक्ति प्रदान की गई है। किसी विशय का स्पश्ट उल्लेख जिस पर केन्द्रीय विधायिका विधि बनाने के लिए सशक्त है, का अर्थ है कि अवशिष्ट क्षेत्रो में केन्द्रीय विधायिका द्वारा विधान निर्माण पर विवसित प्रतिषेध है।

4. दखलकृत क्षेत्र का सिद्धांत – इसका अर्थ यह कि संघ या केन्द्रीय विधायिका किसी विशिष्ट विषय पर विधि बनाती है और इस प्रकार उस क्षेत्र पर दखल कर लेती है तो राज्य विधायिकाओ का उस क्षेत्र पर विधि निर्माण का कोई अधिकार नही रहता। फिर भी अगर राज्य विधायिका उस क्षेत्र पर कोई विधि अधिनियमित करती है तो राज्य द्वारा बनाई विधि उस सीमा तक असंवैधानिक होगी। संघ सूची में संघ सरकार राज्य सूची में राज्य सरकार को अधिकार प्राप्त है और एक शक्ति दूसरी शक्ति पर अतिक्रमण नही कर सकती। परन्तु समवर्ती सूची में समस्या होती है जिसमें दोनो विधि निर्माण की शक्ति प्राप्त है। संविधान का अनुच्छेद 254 (1) – कि यदि किसी राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाई गई विधि का कोई उपलब्ध संसद द्वारा बनाई गई विधि में जिसे बनाने के लिए संसद सक्षम है किसी उपबंध के या समवर्ती सूची में प्रमाणित किसी उपबंध के विरूद्ध है तो खण्ड (2) के उपबंधो के अधीन रहते हुए यथास्थिति, संसद द्वारा बनाई गई विधि, चाहे वह ऐसे राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाई गई विधि से पहले या उसके बाद में पारित की गई हो, या विद्यमान विधि, अभिभावी होगी और उस राज्य के विधान मण्डल द्वारा बनाई विधि उस विरोध की मात्रा तक शून्य होगी। **अनुच्छेद 254 (2)** – जहाँ राज्य के विधान मण्डल द्वारा समवर्ती सूची में प्रमाणित किसी विशय के सम्बन्ध में बनाई गई विधि मे कोई ऐसा उपबन्ध अन्तर्विष्ट है जो संसद द्वारा पहले बनाई गई विधि के या उस विषय के सम्बन्ध में किसी विद्यमान विधि के उपबन्धो के विरूद्ध है तो ऐसे राज्य के विधान मण्डल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि को राष्ट्रपति के विचार के लिए आरक्षित रखा गया है और उस पर उसकी अनुमति मिल गई है तो वह विधि उस राज्य में अभिभावी होगी परन्तु इस खण्ड की कोई बात संसद को उसी विषय के सम्बन्ध में कोई विधि जिसके अर्न्तगत ऐसी विधि है जो राज्य के विधान मण्डल द्वारा इस प्रकार बनाई गई विधि का परिवद्धन, संशोधन परिवर्तन या निरसन करती है, किसी भी समय अधिनियमित करने से निवारित नही करेगी।

5. सार और मर्म का सिद्धांत – यह सिद्धांत किसी विधायिका की सम्बद्ध सुची में उल्लिखित विषय पर विधि बनाने की सक्षमता को जाँचने के लिए लागू किया जाता है। न्याय पालिका के समक्ष अक्सर यह प्रश्न बार बार आता है

कि क्या एक विधि जो किसी विशिष्ट प्रविष्टि या प्रविष्टियो पर तात्पर्यता है वास्तव में क्या किसी और सूची में किसी अन्य प्रविष्टि कि अर्न्तगत बनाई गई है जिसमें वह विधायिका वह विधि बनाने के लिए सक्षम नही थी और इस प्रश्न का हल सार और मर्म के सिद्धात को लागू करके किया जाता है।

<u>सुब्रहमन्यन चेट्टियार बनाम मुथुस्वामी गाउन्डन AIR1941 S.C. 47 :</u> में भारत सरकार अधि0 1935 की धारा 100 के सम्दभ्र में उपर्युक्त प्रश्न court के के समक्ष आया :

यह स्पश्ट करते हुए कि सार और मर्म का सिद्धांत privy council us Canada के संविधान के सन्दर्भ में प्रतिपादित किया जब ब्रिटिश नार्थ अमरीका एक्ट, 1867 की धाराओ 91 और 92 के अर्न्तगत court के समक्ष ऐसा ही प्रश्न उठाया गया।

chief justic, सर मॉरस ग्वायर ने कहा कि समय समय पर ऐसा अवश्य होगा कि कोई विधान, जो यद्यपि किसी अनुसूची में उल्लिखित किसी एक विशय से सम्बन्धित हो किसी अन्य अनुसूची में उल्लिखित किसी अन्य विषय को भी छूता हो और विभिन्न उपबन्ध ऐ दूसरे से इतने जटिलता से गुंथे हुए हो कि कठोर रूप से शाब्दिक निर्वचन को आँख बन्द कर लागू करने में बहुत सारे कानून अविधिमान्य घोशित हो जायेगे।

अतः Judicial committee के द्वारा यह नियम प्रतिपादित किया गया कि आपेक्षित कानून को इस प्रकार परीक्षण किया जाये जिससे उसके सार और मर्म अथवा उसकी वास्तविक प्रकृति और स्वलक्षण का पता यह अवधरित करने के लिए लगाया जा सके कि वह विधान इस अनुसूची में उल्लिखित विषय के सन्दर्भ में था या उस अनुसूची के।

<u>प्रफुल्ल कुमार बनर्जी बनाम वाणिज्यिक बैंक, खुलना</u> AIR 1974 S.C. 60 : में भी उपरोक्त सिद्धांत भी इसी रूप में स्वीकार करते हुए न्यायालय ने उपरोक्त सार और मर्म के सिद्धांत को मान्यता प्रदान थी।

न्यायालय ने यह अवधारित किया कि जहाँ पर स्पष्ट रूप से निर्देशित न हो यह न्यायालय ने तर्क दिया कि सार और मर्म का सिद्धांत कनाडा और आस्ट्रेलिया पर लागू होने वाला सिद्धांत है भारत पर नही क्योकि भारत के संविधान निर्माताओ ने भविष्य मे आने वाली कठिनाइयो का पूर्वानुमान कर केवल दो नही बल्कि तीन अनुसूचियाँ बनाकर विधायिका के लिए स्पश्ट दिशा निर्देश दिए कि किन विशयो पर किस विधायिका द्वारा विधान बनाए जायेगें।

इस तर्क पर का अस्वीकार करते हुए privy council ने Chief Justice Gwayar के कथन का अनुमोदन किया है और कहा है कि विधायी शक्तियो का स्पष्ट विभाजन संभव नही है और तीनो अनुसूचियो मे अंशछादन अवश्यभावी है।

यह प्रश्न कि क्या किसी विधायिका ने अपने क्षेत्र से परे किसी अन्य के क्षेत्र में घुसपैठ की है एक सार का प्रश्न है यात्रा का नही

मुम्बई राज्य बनाम एफ0एन0 बलासारा AIR 1951 SC 318 में राज्य विधान मण्डल ने राज्य सूची की प्रविष्टि (8) के विषय मादक लिकर अर्थात मादक लिकर का उत्पादन विनिर्माण कब्जा परिवहन क्रय और विक्रय के अर्न्तगत मुम्बई प्रतिषेध अधि0 1949 अधिनिमियत किया।

इसे इस आधार पर आक्षेपित किया गया कि यह संघ सूची की प्रविष्टि 41 जिसका सम्बन्ध सीमा शुल्क सीमातोओं के आर पार आयात और निर्यात से है के अर्न्तगत संघ का विषय है क्योकि लिकर के क्रय उपयोग परिवहन और प्रतिषेध आयात पर पडेगा। SC. ने उक्त अधि0 को विधिमान्य माना यद्यपि इसका दानुशंगिक प्रभाव संघ की शक्तियों पर भी पडता था।

बेनेट थोलमन एण्ड कम्पनी बनाम भारत संघ (1972) 2 SC 788 : SC ने स्पष्ट किया कि विषयवस्तु और विधायिका के प्रत्यक्ष और आनुशंगिक प्रभव के सार और मर्म के परीक्षण विधायी सक्षमता के लिए सुसंगत प्रश्न है पर वे मूल अधिकारो के अतिक्रमण के प्रश्न के लिए विसंगत है।

6. आभासी विधान का सिद्धांत–K.C. Gajapati Narayan dev Vs. State of orissa AIR 1953 SC 375 : में उडीसा कृशीय आयकर (संशोधन) अधिनियम 1950 की विधि मान्यता का प्रश्न था इसने SC ने उपरोक्त सिद्धांत को स्पश्ट करते हुए कहा है कि

यदि किसी राष्ट्र कर संविधान ऐसी विभिन्न संस्थाओ के बीच विधि शक्तियो को वितरित करता है जिन्हे अपनी अपनी पारिधि के भीतर विनिदिष्ट विधायी प्रधिकार पर परिसीमा हो तो प्रश्न यह उठता है कि क्या कानून की विषय वस्तु के सन्दर्भ में या उसके अधिनियमित किए जाने के ढंग में किसी विशिष्ट मामले में विधायिका द्वारा संवैधानिक शक्तियो कर उल्लंघन किया गया है या नही।

इस प्रकार के उल्लंघन प्रत्यक्ष प्रकट या स्पष्ट हो सकते है अथवा यह ह्द्म गुप्त या परोक्ष भी हो सकते है और इन परवर्ती मामलो के वर्ग को विभिन्न न्यायिक निर्णयो में आभासी विधान का नाम दिया गया है।

इसका अर्थ हुआ कि यद्यपि कोई विधायिका कोई कानून बनाते समय अपनी विधायी शक्तियो सीमाओ के अनुरूप कार्य करने का अभास देता है तथापि सार में और वास्तव में वह उन शक्तियो का अतिक्रमण करता है और बाद में परीक्षण से यह स्पष्ट को जाता है कि वह अतिक्रमण केवल बहाना या छद्म था।

अर्थात दूसरे शब्दो में अधि0 का सार महत्वपूर्ण है उसका स्वरूप या बाह्य रूप नही और यदि सार में विषय वस्तु ऐसी है जो विधायिका की विधायी शक्तियो से परे है तो उसका स्वरूप निन्दनीय हूँ।

विधायिका परोक्ष तरीका अपनाकर संवैधानिक प्रतिषेध का अतिक्रमण नही कर सकती।

7. राज्य क्षेत्रीय सम्बन्ध का सिद्धांत :

संविधान के अनुच्छेद 245 (1) के अनुसार इस संविधान के उपबन्धो के अधीन रहते हुए, संसद भारत के सम्पूर्ण राज्य क्षेत्र या उसके किसी भाग के लिए विधि बना सकेगी और किसी भाग के लिए विधि बन सकेगी।

अनुच्छेद 245(2) संसद द्वारा बनाई गई विधि इस आधार पर असंवैधानिक नही मानी जाएगी कि उसका राज्य क्षेत्रातीत प्रवर्तन होगा।

अतः संविधान केवल राज्यक्षेत्रातीत विधि बनाने की शान्ति केवल संसद को प्रदान करता है राज्य विधान मण्डल को नहीं और इसलिए राज्य विधान मण्डल के द्वारा अधिनियमित किसी विधि पर आक्षेप किया जा सकता है जब तक की वह राज्य क्षेत्रीय संबंध के आधार पर संरक्षित न हो।

यदि किसी राज्य विधि का उस विधि की विषय वस्तु के साथ पर्याप्त सम्बन्ध है तो वह राज्य विधि मान्य है चाहे उसका राज्यक्षेत्रातीत प्रवर्तन हो।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि राज्य विधान मण्डल की राज्यक्षेत्रातीत विधि बनाने की अधिकारिता है चाहे वह विधि भी विषय वस्तु उस राज्य की क्षेत्रीय सीमा के भीतर उपस्थित न हो यदि इन दोनो के बीच प्रर्याप्त सबन्ध विद्यमान हो।

मुम्बई राज्य बनाम आर0 एम0 डी0 चमरबागवाला AIR 1957 SC 699 : कराधन (embosition of tass) के सम्बन्ध में भारत में राज्य क्षेत्री संबंध के सिद्धात अधिकतम रूप में लागू है।

एक newspaper printing and publishing Banglore में होती था बम्बई में भी पर्याप्त रूप से प्रचलित था इस समाचार पत्र के द्वारा प्रत्यर्थी पुरस्कार प्रतियोगिताओ का संचालन किया करता था जिसके लिए बम्बे में स्थित एजेन्ट और आगारो (establishment) द्वारा लोगो से प्रवेश पत्र और फीस ली जाती थी जिसे Banglore भेजा जाता था।

बॉम्बे विधान मण्डल ने 1952 के अधिनियम को बनाकर उसके अर्न्तगत पुरस्कार प्रतियोंगिता के व्यवसाय पर कर लगा दिया।

प्रत्यर्थी ने तर्क दिया कि 'कर' का भुगतान करने के लिए वह बाध्य नहीं था, क्योंकि यह अधि० राज्यक्षेत्रातीत होने के कारण अविधिमान्य था।

S.C. ने अभिनिर्धारित किया कि इस तरह के विवाद में Court पहले यह परीक्षण करें कि वह विधि जिस विधियिका ने बनाई थी उसे वह विधि

बनाने का अधिकार था क्योंकि अपनी विधायी शक्तियों के अन्तर्गत एक राज्य विधान मण्डल को स्वयं के राज्य क्षेत्र या उसमें किसी भाग के लिए विधि बनाने की प्राप्त है, और राज्य क्षेत्रीय सम्बन्ध में अभाव में ऐसी कोई विधि नही बना सकता जिसका प्रभाव राज्य से 'परे' पड़े।

राज्य क्षेत्रीय सम्बन्ध की पर्याप्तता के लिए कोर्ट 2 बातें देखेगा।

1. सम्बन्ध वास्तविक होना चाहिए, भ्रांतिपूर्ण नहीं
2. अधिरोपित किये जाने वाला दायित्व उस सम्बन्ध के संग होना चाहिए।

बिहार राज्य बनाम चारूशीला दास AIR 1959 S.C. 1002 S.C. ने निर्णय दिया कि किसी राज्य में जहाँ भी धार्मिक प्रतिष्ठान स्थित है उस राज्य का विधान मण्डल उनके सम्बन्ध में विधि बनाने के लिए अधिकृत है और यह शक्ति तब भी बनी रहती है जब कि उस प्रतिष्ठान की सम्पत्ति का बड़ा अथवा छोटा भाग किसी अन्य राज्य में स्थित हो।

इसकी प्राकृतिक परिणाम यह है कि इस विधि को अधिनियम करने वाला राज्य विधान मण्डल न्यायलियों उनके सेवकों और एजेण्ट जो न्याय प्रशासन के लिए उस राज्य में निवास करते है के लिए भी विधि बनाने के लिए सक्षम है।

8. **पृथक्करण का सिद्धान्त :**

यह एक सुप्रतिष्ठित सिद्धान्त है कि जब किसी अधिनियम विधि की संवैधनिकता का प्रश्न उठे और यह मालूम पड़े कि उस अधिनियम विधि का एक भाग जिसे असंवैधानिक घोषित कर दिया गया है अधिनियमित के अन्य भाग से पृथक किया जा सकता है तो केवल वह भाग जिसे पृथक कर दिया गया है असंवैधानिक घोषित किया जाएगा। जबकि अधिनियमित का शेष भाग असंवैधानिक बना रहेगा।

जहाँ इस प्रकार का पृथक्करण सम्यक न हो तो सम्पूर्ण अधिनिमित को ही असंवैधानिक घोषित करना पड़ेगा।

A.K. Gopalan Vs. State of Modern :

मे० SC ने कहा कि संविधान के विरोध के मामले में आपेक्षित अधिनियम को केवल विरोधी उपबन्ध ही शून्य होगा। सम्पूर्ण अधिनियम नहीं. और अधिनियम का जितना अधिक भाग बचाया जा सके उसे बचाने का प्रयत्न

करना चाहिए। यदि अविधिमान्य भाग का लोप विधायिका के उद्देश्य की प्रकृति को परिवर्तित न करे तो यह पृथक्करणीय है।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि धारा–14 को छोड़कर निवारक निरोध अधि० 1950 की अन्य सभी धाराएँ विधिमान्य है और चूंकि धारा 14 को शेष बचे अधि० से पृथक किया जा सकता है। इसलिए दायी का विरोध अविधिक नहीं है।

अर्थान्वयन और पृथक्करण के प्रश्न दो निम्न प्रश्न है क्योंकि जब एक से अधिक युक्तियुक्त निर्वचन सम्भव हो जिसमें से एक विधि को विधिमान्य करता है और दूसरा अविधिमान्य तो पूर्वतों ही स्वीकार्य होगा, और यदि यह सम्भव न हो तो न्यायालय के पास दूसरे अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं है कि वह अनिर्णीत करे कि क्या सम्पूर्ण विधि को विखंडित कर दिया जाए अथवा अच्छे और बुरे भाग एक दूसरे से पृथक्करणीय है।

RMD Chaman Baghoda Vs. Union of India 1975 SCR 930 में प्रश्न यह उठा कि क्या पुरस्कार प्रतियोगिता अधि० 1955 की धारा 2 (घ) में पुरस्कार प्रतियोगिता की परिभाशा जिसके अन्तर्गत कौशल और घूत दोनों प्रकार की प्रतियोगिताएँ सम्मिलित थी, केवल धूत प्रतियोगिताओं तक ही समिति थी।

निर्वचन व्याकरणिक और रिष्टि के नियमों को लागू करते हुए S.C. इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि अभिव्यक्ति पुरस्कार प्रतियोगिता का अर्थ अधिनियमों में केवल छूट प्रकृति की प्रतियोगिताओं तक ही सीमित थी।

9. <u>भविश्य प्रत्यादेश का सिद्धान्त :</u>

आई०सी० गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य AIR 1967 एस.सी 1613 के एस.सी. 11 में से 5 न्यायाधीश ने इस सिद्धान्त को प्रतिपादित किया उनका विचार था कि

संसद का मूल अधिकारों संशोधन को कोई अधिकार प्राप्त नहीं है।

Chief Justice Subbarao ने अपनी और 4 साथियों की ओर से यह प्रश्न किया कि ''जब संसद एकमत होते हुए भी अपनी साधारण विधायी प्रक्रिया के अर्न्तगत एक विधेयक अधिनियमित कर मूल अधिकारों को

प्रभावित नहीं कर सकती तो वह वकेल 2/3 बहुमत से किसी मूल अधिकार को कैसे निराकृत कर सकती है और जब संविधान के कम महत्वपूर्ण अनुच्छेदों के संशोधन को संघ के राज्यों बहुमत का अनुसमर्थन आवश्यक है तो इस आवश्यकता को बगैर पूरा किए हुए एक मूल अधिकार को कैसे संशोधित किया जा सकता है।

अतः यह अधिनिर्धारित करते हुए कि संसद मूल अधिकारों में संशोधन के लिए सक्षम नही है। 5 न्यायाधीशों के संविधान के बैच ने एक साथ कहा कि यह नहीं हो सकता। इस कारण ही इस सिद्धांत का नाम 'भूतलक्षी प्रभाव नही हो सकता। इस कारण ही सिद्धान्त का नाम भविष्य लक्षी प्रत्यादेश रखा गया।

इस निर्णय का प्रभाव यह हुआ कि इस निर्णय के दिन तक मूल अधिकारों के सम्बन्धों में सभी संशोधन विधिमान्य और प्रभावपूर्ण होंगे और उसके पश्चात मूल अधिकारों में संशोधन का कोई अधिकार संसद को नही होगा।

इस सिद्धान्त के लागू किए जाने पर तीन निर्बन्धन भी लगाए गये कुछ समय के लिए भविष्यलक्षी प्रत्यादेश का सिद्धान्त केवल संवैधानिक विषयों पर ही लागू होगा 2 केवल मात्र S.C. ही और कोई अन्य न्यायालय इस सिद्धान्त को लागू कर सकने का अधिकारी नहीं होगा, और 3 अधिरोपित किए जाने वाली भविष्य लक्षिता की परिधि क्या होगी यह विषय एस0सी0 के विवेकाधिकार का है जिसको, जो कारण अथवा विषय उस न्यायालय के समक्ष है उसके न्याय के आधार पर ही तय किया जाएगा।

कोई विधि जिसे अविधिमान्य घोशित किया गया तो भूत में किए गए संव्यवहारों और निहित अधिकारों पर कोई प्रभाव नहीं डाल सकेगी और केवल भविष्य में होने वाले अर्थात न्यायिक अमान्यता के बाद के संव्यवहारों और अधिकारों के सम्बन्ध में प्रवर्तित हो सकेगी।

भारत में भविष्य लक्षी सिद्धान्तों के जन्म के 2 विधिमान्य कारण है

1. मूल अधिकारों को संशोधित करने की ससंद की शक्ति और विर्निदिष्ट रूप से संविधान का पहला, और सत्रहवाँ संशोधन एस.सी. ने शंकरी प्रसाद बनाम भारत संघ ए.आई.आर. 195 एस.सी. 458 और

सज्जन सिंह बनामह राजस्थान राज्य ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 845 में उचित ठहरया था।

2. 1950 से 1967 की अवधि में बहुत सारे विधानों को अधिनियमितता किया गया जिससे भारत में सम्बन्धी क्राँति का दौर आया।

10. <u>ग्रहण का सिद्धान्त :</u>

संविधान के अनुच्छेद 13 (1) के अनुसार इस संविधान के प्रारम्भ से ठीक पहले भारत के राज्य क्षेत्र में प्रवृत्त सभी विधियाँ उस मात्रा तक शून्य होगी जिस तक वे उस भाग के उपबन्धों से असंगत है। अनुच्छेद 13(2) के अनुसार ऐसी कोई विधि नहीं बनाएगा जो इस भाग द्वारा प्रदत्त अधिकारों को छीनती है या न्यून करती है और इस खण्ड के उल्लंघन में बनाई गई प्रत्येक विधि उल्लंघन की मात्रा तक शून्य होगी।

मधुलिमये बनाम उपखण्ड मजिस्ट्रेट ए.आई.आर. 1971 एस. सी. 2486 में संविधान पूर्व विधि आपराधिक प्रक्रिया संहिता 1898 की धारा 144 और अध्याय 8 को इस आधार पर आक्षेपित किया गया कि वे अनुच्छेद 19 (1) (क) का अतिक्रमण करते थे और उन्हें अनुच्छेद 19(2) के संशोधन के पूर्व जैसा तब था के द्वारा बचाया नहीं जा सकता, जिसके अन्तर्गत राज्य के पास लोक व्यवस्था के आधार पर वाक् स्वांत्रय और अभिव्यक्ति स्वातंत्रय पर निर्बन्धन लगाने की शक्ति नही थी। साथ ही अनु० 19(2) में प्रस्तुत अभिवयक्त 'राज्य की सुरक्षा' का एस.सी. ने बार–बार अर्थान्वयन केवल राष्ट्रीय सुरक्षा को गम्भीर खतरा अर्थ में किया है और इसलिए आपेक्षित धाराएँ अभिव्यक्ति 'राज्य की सुरक्षा' अर्थ में नहीं आती है और इस कारण संविधान के अस्तित्व के आने पश्चात शून्य हो गई। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्रहण का सिद्धान्त लागू होता है जिसके अन्तर्गत आपेक्षित धाराओं पर ग्रहण लग जायेगा और सिद्धान्त में संशोधन करने के पश्चात ही पुनः जीवन पा सकेगी। एस.सी. ने ग्रहण का सिद्धान्त लागू नहीं किया।

न्यायालय ने संशोधन के भूललक्षी प्रवर्तन में एक कल्पना बनाई और इस प्रकार उन उपबन्धों को असंविधानिक होने से बचा लिया।

<u>दुलारे लोध बनाम तृतीय अतिरिक्त जिला जज, कानपुर ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 1260</u> में एस.सी. ने एक अधिनियम की एक धारा पर ग्रहण का

सिद्धान्त लागू किया जिसके अंतर्गत एक किरायेदार के विरुद्ध पूर्व में पारित बेदखली की डिक्री का निश्पादन नहीं किया जा सकता था। मकान मालिकों के कष्ट को समाप्त करने के लिए इस धारा का भूतलक्षी संशोधन किया गया था।

यह अभिनिर्धारित किया गया कि मूल धारा के द्वारा डिक्री पर ग्रहण पड़ गया था जिस कारण उसे निष्पादित नहीं किया जा सका, और ग्रहण की परछाई संशोधन द्वारा भूतपक्षी प्रभाव से समाप्त कर दिए जाने के पश्चात डिक्री पुनर्जीवित और निष्पादित हो गई।